

अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबंधों के बारे में भारतीय नीति और स्थिति का विश्लेषण

Decoding India's Stand on International Sanctions

ऋषिका चौहान

Rishika Chauhan

December 15, 2014

पिछले सप्ताह रूसी राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतीन और मीडिया को संबोधित करते हुए प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी ने कहा था, “वैश्विक राजनीति और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का चरित्र बदल रहा है, लेकिन इस रिश्ते का विशेष महत्व है और भारत की विदेश नीति में इसके विशिष्ट स्थान में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता.” नई दिल्ली में आयोजित 15 वीं वार्षिक भारत-रूस शिखर वार्ता के समय दिये गये मोदी के इस वक्तव्य से उनकी यह धारणा तो स्पष्ट हो गई है कि भारत रूस के साथ सहयोग बढ़ाने को इच्छुक है. साथ ही साथ इससे यह भी स्पष्ट हो गया है कि भारत पश्चिमी देशों द्वारा रूस के विरुद्ध लगाये जा रहे प्रतिबंधों का समर्थन नहीं करेगा. प्रतिबंधित देशों से अलग रहने के बजाय नई सरकार ने उनसे संबंध बनाये रखने की ही नीति अपनाई है. यह नीति बहुत हद तक पिछली सरकार अर्थात् यूपीए की नीति के अनुरूप ही है. परंतु मनमोहन सिंह की तरह मोदी भी प्रतिबंध के मामले पर खुल कर बोलने से कतराते रहे हैं. आधिकारिक स्पष्टीकरण के अभाव में एकपक्षीय प्रतिबंधों के बारे में भारत की वर्तमान और पिछली नीति को लेकर कुछ भी कयास लगाया जा सकता है.

पिछले कुछ वर्षों में नई दिल्ली इस स्थिति पर कायम रहा है कि संयुक्त राष्ट्र (UN) द्वारा लगाये गये प्रतिबंधों का तो वह समर्थन करेगा, लेकिन किसी देश-विशेष द्वारा लगाये गये एकपक्षीय प्रतिबंधों का वह समर्थन नहीं करेगा. सन् 2010 में भी यूपीए ने ईरान पर लगाये गये एकपक्षीय प्रतिबंधों का यह कहते हुए विरोध किया था कि इसका “स्वरूप अपरदेशीय” है, लेकिन संयुक्त राष्ट्र (UN) द्वारा ईरान पर लगाये गये प्रतिबंधों का भारत सरकार ने समर्थन किया था. बाद में इसी वर्ष मार्च में क्रीमिया पर रूसी हमले के कारण पश्चिमी देशों ने रूस के विरुद्ध प्रतिबंध लगाये तो मनमोहन सिंह ने शीघ्रता से इस “एकपक्षीय निर्णय” पर भारत की ओर से असहमति प्रकट की थी. यद्यपि प्रधानमंत्री ने इस विषय पर खुलकर अपने विचार प्रकट नहीं किये, लेकिन भारत की आधिकारिक स्थिति यही कायम रही कि भारत ने “कभी भी किसी भी देश के विरुद्ध एकपक्षीय प्रतिबंधों का समर्थन नहीं किया. इसलिए भारत अब भी किसी देश या किन्हीं देशों के समूह द्वारा किसी भी प्रकार के एकपक्षीय प्रतिबंध का कभी भी समर्थन नहीं करेगा.”

नई भारत सरकार प्रतिबंधों के बावजूद भी रूस के साथ सहयोग बढ़ाने की अपनी नीति पर कायम है. प्रधानमंत्री बनने के बाद मोदी ने बार-बार अपनी इस नीति को रेखांकित किया है कि वे रूस के साथ न केवल अपने पुराने संबंधों पर कायम रहेंगे, बल्कि उन्हें काफ़ी बढ़ाएँगे भी. रूसी दृष्टांत से यह तो स्पष्ट हो गया है कि भारत हमेशा ही प्रतिबंधों पर अपनी नीति पर कायम रहा है, लेकिन पिछले कुछ वर्षों में एकपक्षीय प्रतिबंधों के संबंध में भारत की नीति और स्थिति का अध्ययन और उसके समर्थन और विरोध के मूल कारणों की जाँच-परख बहुत लाभप्रद हो सकती है. खास तौर पर प्रतिबंधित होने वाले देश के रूप में भारत के अनुभव

को अगर हम देखें तो प्रतिबंध लगाने के पीछे जो राष्ट्रीय हित और मुद्दों का महत्व रहता है उससे एकपक्षीय प्रतिबंधों के संबंध में भारत की नीति और स्थिति को अच्छी तरह से समझा जा सकता है।

पहली बात है प्रतिबंधित होने का भारत का अपना अनुभव. भारत पर कई बार प्रतिबंध लगाये गये और कई बार प्रतिबंध लगाने की धमकी भी दी गई. सन् 1974 में भारत ने जब अपना पहला परमाणु परीक्षण (पोखरन I) किया तो पश्चिमी देशों ने परमाणु उपकरण और सामग्री खरीदने के लिए उस पर रोक लगा दी. नब्बे के दशक में इस आधार पर भारत के असैन्य अंतरिक्ष कार्यक्रम पर प्रतिबंध लगा दिये गये कि क्रायोजेनिक रॉकेट प्रौद्योगिकी में प्रक्षेपास्त्र छोड़ने की क्षमता भी मौजूद होती है. सन् 1992 में परमाणु सप्लायर ग्रुप (NSG) ने परमाणु व्यापार संबंधी गतिविधियों के सिवाय अन्य सभी परमाणु गतिविधियों के लिए भारत पर प्रतिबंध लगा दिया. सबसे अधिक व्यापक और बहुचर्चित एकपक्षीय प्रतिबंध जो भारत पर अमरीका ने लगाया था, वह था मई 1998 में भारत के दूसरे परमाणु परीक्षण (पोखरन II) के बाद लगाया गया प्रतिबंध. यह प्रतिबंध शस्त्र निर्यात नियंत्रण अधिनियम (AECIA) की धारा 102 (बी) के तहत लगाया गया था, जिसमें विदेशी सहायता, शस्त्रों की बिक्री और लाइसेंस, विदेशी सैन्य वित्तपोषण और कतिपय नियंत्रित वस्तुओं और प्रौद्योगिकी के निर्यात पर लगाये गये प्रतिबंध भी शामिल थे. राष्ट्रपति क्लिंटन की प्रशासनिक नीति के अनुरूप उच्चस्तरीय दौरों, सेना-से-सेना के बीच संपर्कों पर रोक लगाते हुए कुछ गैर-सांविधिक प्रतिबंध भी लगा दिये गये.

जहाँ इन प्रतिबंधों का वांछित प्रभाव मुख्यतः सामग्री पर रोक लगाने का था, वहीं इसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी पड़ा. उस पीढ़ी के भारतीय नेता और नौकरशाह यह मानने लगे थे कि प्रतिबंध प्रतिबंधित देश के व्यवहार में परिवर्तन लाने का उपकरण होने के बजाय उसे जबरन ऐसा न करने देने का ही एक उपाय है. प्रतिबंध के प्रति यह धारणा आज भी भारत की विदेश नीति की सोच में देखी जा सकती है और यही कारण है कि प्रतिबंध के प्रति नई दिल्ली की आज भी ऐसी ही विमुखता है.

इसका दूसरा पहलू है, भारत के राष्ट्रीय हित. एकपक्षीय प्रतिबंधों पर भारत की प्रतिक्रिया तय करने में इस पहलू की भी भूमिका रहती है. जिन देशों के साथ भारत के अच्छे संबंध या व्यापारिक रिश्ते होते हैं, उनके विरुद्ध एकपक्षीय प्रतिबंधों का समर्थन करने का निर्णय करना भारत के लिए कभी आसान नहीं रहा है. मान लें कि कुछ दशक पहले अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबंधों वाले अनेक देश भारत की व्यापारिक गतिविधियों में साझीदार रहे हैं, उनके विरुद्ध लगाये जाने वाले प्रतिबंधों का समर्थन या विरोध करने का निर्णय करते हुए दोनों देशों के हितों का भी भारत को ख्याल रखना पड़ता है. इस संबंध में म्याँमार का एक महत्वपूर्ण उदाहरण हमारे सामने है. उन्नीस सौ नब्बे के दशक के उत्तरार्ध में और दो हजार के सभी दशकों में अमरीका ने म्याँमार पर कड़े प्रतिबंध लगा दिये थे और 2010 में उनका नवीयन भी कर दिया था, ऐसी स्थिति में भारत सरकार ने अमरीका के नेतृत्व में म्याँमार के विरुद्ध लगाये गये प्रतिबंधों से सुरक्षित दूरी बनाये रखना ही उचित समझा. हालाँकि इन प्रतिबंधों का मकसद म्याँमार में लोकतंत्र को बढ़ावा देना ही था और भारत भी इस मकसद से सहमत था, जो भारत के लिए कम महत्वपूर्ण नहीं था. पश्चिमी देशों द्वारा लगाये गये प्रतिबंधों के कारण चीन ने इस शून्य को भरने की बेताबी दिखाई और यह भारत के राष्ट्रीय हित का ही मामला था.

तीसरा पहलू है, प्रतिबंधों के उद्देश्यों को लेकर समर्थन देने की भारत की इच्छा या अनिच्छा अर्थात् भारत के लिए मुद्दे का महत्व. हालाँकि प्रतिबंधित देश के रूप में भारत का अपना कटु अनुभव रहा है और यह बात बहुत हद तक उसके व्यवहार में भी प्रतिबिंबित होती है, फिर भी उस मुद्दे के महत्व जिसके कारण प्रतिबंध

लगाये गये, की भी अपनी भूमिका रहती है. नई दिल्ली ने उन मुद्दों पर लगे तमाम प्रतिबंधों का हमेशा समर्थन किया है, जिन पर उसका भरोसा रहा है. सी. राजमोहन के अनुसार यद्यपि लोकतंत्र भारत की विदेश नीति की “राजनैतिक प्राथमिकता” रही है, फिर भी लोकतंत्र को बढ़ावा देने के इरादे से लगाये गये प्रतिबंधों को लेकर भी भारत सरकार बहुत इच्छुक नहीं रही है. बहरहाल खास तौर पर भेदभाव के कारण भारतीय प्रवासियों के विरुद्ध लगाये गये प्रतिबंधों को नई दिल्ली ने अवश्य ही समर्थन प्रदान किया है.

चालीस के दशक में भारत पहला देश हो गया था, जिसने दक्षिण अफ्रीका की रंगभेद की नीति के खिलाफ प्रतिबंध लगाया था. इसके अलावा भारत ने दक्षिण अफ्रीका की सरकार के विरुद्ध एकपक्षीय प्रतिबंध का न केवल समर्थन किया था, बल्कि दूसरे देशों और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों से भी ऐसा ही करने की अपील भी की थी. इसके बाद अस्सी के दशक के उत्तरार्ध में भारत ने फिर वही नीति अपनाई और फिजी में रहने वाले भारतीय मूल के लोगों के खिलाफ भेदभाव के नीति के विरोध में प्रतिबंध भी लगाये. हाल ही में श्रीलंका का ताज़ा उदाहरण है, जहाँ मुद्दे के महत्व को स्वीकार कर लिया गया है और प्रतिबंध लगाने के पक्ष में जनमत तैयार होने लगा है. पिछले कुछ वर्षों के दौरान विभिन्न राजनैतिक दलों के प्रमुख नेता भारत सरकार से यह माँग करते रहे हैं कि छब्बीस साल तक चले गृहयुद्ध में सेना के कथित दुरुपयोग के कारण उसे दंडित करने की कार्रवाई का वह न केवल समर्थन करे बल्कि अपने दक्षिणी पड़ोसी पर प्रतिबंध भी लगाये. सन् 2013 में तमिलनाडु के राज्यपाल के. रोशैय्या ने भारत सरकार से कहा था कि वह न केवल श्रीलंका सरकार के खिलाफ आर्थिक प्रतिबंध लगाये, बल्कि अन्य देशों को भी ऐसा करने के लिए सहयोग प्रदान करे. उन्होंने तर्क दिया था कि श्रीलंका में तमिलों के साथ दुर्यवहार, भेदभाव और उनके विस्थापन के कारण ही वे प्रतिबंध लगाने की माँग कर रहे हैं.

उल्लेखनीय है कि मूलतः भारत की विदेशनीति को निर्मित करने वाले पं. जवाहर लाल नेहरू भी प्रतिबंधों के महत्व को स्वीकार करते थे. सन् 1938 में उन्होंने कांग्रेस की सामूहिक सुरक्षा की नीति को स्पष्ट करते हुए इसे शासन की नीति के एक अंग के रूप में स्वीकार किया था. उन्होंने कहा था कि सामूहिक सुरक्षा की नीति को सफल बनाने के लिए प्रतिबंध लगाना ज़रूरी होगा, लेकिन पिछले कुछ समय से भारतीय नेता इस विषय पर खुलकर बोलने से कतराते रहे हैं. कुछ मौकों पर इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती और नई दिल्ली को एकपक्षीय प्रतिबंध के लिए अपेक्षित कार्रवाई करने के लिए तैयार रहना पड़ेगा. इस संबंध में ईरान का महत्वपूर्ण उदाहरण हमारे सामने है. यद्यपि भारत ईरान के विरुद्ध एकपक्षीय प्रतिबंध लगाने का समर्थक नहीं रहा है, फिर भी वह उन गौण प्रतिबंधों की अनदेखी नहीं कर सकता था, जिन्हें अमरीका के नेतृत्व वाले राष्ट्रकुलों द्वारा लगाया जा रहा था. चूँकि गौण प्रतिबंधों के कारण गैर-अमरीकी नागरिकों और कंपनियों पर भी आर्थिक प्रतिबंध लगने का खतरा मंडरा रहा था, इसलिए कई भारतीय निवेशक ईरान में निवेश करने और उसके साथ व्यापारिक संबंध बनाने से कतराने लगे थे. यद्यपि सैद्धांतिक रूप में भारत संयुक्त राष्ट्र (UN) द्वारा लगाये गये प्रतिबंधों का समर्थन करता है और उत्तरी कोरिया पर लगाये गये महत्वपूर्ण प्रतिबंधों के समान प्रतिबंधों का भी भारत ने पूरी तरह से समर्थन भी किया है, फिर भी कुछ मामलों में इसकी अनदेखी भी हो जाती है. नब्बे के दशक में भारत ने ईराक पर संयुक्त राष्ट्र (UN) के प्रतिबंधों का विरोध किया था और सन् 1992 में जब संयुक्त राष्ट्र (UN) सुरक्षा परिषद लीबिया पर प्रतिबंध लगाना चाहता था तो भारत ने मतदान में भाग नहीं लिया था.

फिर भी कहा जा सकता है कि एकपक्षीय प्रतिबंधों पर भारतीय प्रतिक्रिया तय करने में घरेलू कारणों और नियामक विचारों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रहती है. घरेलू तौर पर प्रतिबंधों का पिछला अनुभव और राष्ट्रहित ही इस संबंध में नियामक भूमिका अदा करते रहे हैं. साथ ही किसी मुद्दे विशेष को लेकर संवेदनशीलता के कारण उठे नियामक सरोकार भी प्रतिबंधों के संबंध में भारत की नीति को निर्धारित करते रहे हैं, लेकिन इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि अतीत में भारत अपनी घरेलू और विदेश नीति के अनुरूप ही प्रतिबंधों के बारे में विचार करता रहा है, लेकिन अब यह देखना होगा कि विश्व राजनीति में अपने बढ़ते प्रभाव के मद्देनजर वे कौन-से मुद्दे होंगे, जिन्हें सामने रखकर भारत प्रतिबंधों के संबंध में समर्थन या विरोध के बारे में निर्णय करेगा.

ऋषिका चौहान जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के अंतर्राष्ट्रीय राजनीति, संगठन व निःशस्त्रीकरण केंद्र में रिसर्च स्कॉलर हैं और नई दिल्ली स्थित प्रेक्षक अनुसंधान प्रतिष्ठान (ऑब्ज़र्वर रिसर्च फ़ाउंडेशन) में जूनियर फ़ैलो हैं. उनसे rishikachauhan19@gmail.com पर संपर्क किया जा सकता है.

हिंदी अनुवाद: विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा), रेल मंत्रालय, भारत सरकार <malhotravk@gmail.com> / मोबाइल : 91+9910029919.